न्यायालयों का बढ़ता हस्तक्षेप

हमारे देश के हर मुद्दे में न्यायालयों के बढ़ते कदम की चर्चा आज आम हो गई है। कुछ समय पहले उत्तराखंड उच्च न्यायलय ने गंगा और यमुना जैसी नदियों को जीवित प्राणी का दर्जा देते हुए इंसानों की तरह ही उनके कानूनी अधिकारों की पहचान की।हालाँकि मोदी सरकार ने सत्ता संभालने के तुरंत बाद ही गंगा की सफाई को लेकर एक अलग मंत्रालय की स्थापना कर दी थी। लेकिन जिस नदी में प्रतिदिन 150 करोड़ लीटर गंदा जल और 50 करोड़ लीटर औद्योगिक कूड़े का निष्कासन किया जा रहा है, वह एकाएक नहीं रुक सकता। सरकार इसे रोकने के लिए लगातार प्रयासरत है। ऐसे में न्यायालय का यह फरमान एक तरह से सरकार से बढ़कर अपने आप को स्थापित करने का प्रयास लगता है। इतना ही नहीं; न्यायालय ने आदेश के साथ ही तीन ऐसे 'कानूनी प्रहरियों' की नियुक्ति भी कर दी है। जो इन जीवित नदियों के लिए तीन माह के भीतर एक प्रबंधन बोर्ड की स्थापना करेंगे।

पिछले एक दशक से हम सरकार और न्यायालय के बीच के इस अंतर्द्वंद्व से जूझ रहे हैं। इसका कारण यही रहा कि साझा सरकारों के दौरान सरकारी कामकाज की सुस्ती और निष्क्रियता से आम नागरिक को बार-बार और छोटे-छोटे मसलों के लिए न्यायालय के द्वार खटखटाने पड़ते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि न्यायालय को हर क्षेत्र में अनियंत्रित रूप से आगे बढ़-चढ़कर हस्तक्षेप करने की आदत सी पड़ गई है।

नतीजा आज हमारे सामने है। अभी कुछ दिन पहले ही उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय राजमार्गों से 500 मीटर की दूरी तक शराब की दुकानों पर पाबंदी लगा दी। अगर हम इस आदेश पर गौर करें तो देखेंगे कि अलग-अलग राज्यों में बहुत सी ऐसी दुकानें इसी परिधि में आती हैं, जिनके पास इन्हें चलाने का लाइसेंस है। इस प्रकार के लाइसेंस देकर राज्य सरकारें करोड़ों रु. प्रतिवर्ष कमाती हैं। दूसरे ये दुकानें राज्यों की 'नगर-योजना' के हिस्से के अंतर्गत बनाई गई हैं। अब न्यायालय के इस आदेश से होने वाले नुकसान की भरपाई कौन करेगा ? इस आदेश के बाद बेरोज़गार हुए लोगों के रोज़गार की व्यवस्था कौन करेगा ?

इसी प्रकार कुछ समय पहले उच्चतम न्यायालय ने 2000 सी.सी. से ऊपर की डीजल कारों को दिल्ली एवं एनसीआर में प्रतिबंधित कर दिया था।

कुल मिलाकर न्यायालय की घुसपैठ आज हर मामले में हो गई है। इनमें से कुछ तो सार्थक हैं, लेकिन कुछ अत्यंत छोटे-छोटे मुद्दों पर होती हैं। इसका एक नमूना उत्तर प्रदेश के लोकायुक्त की नियुक्ति का है। उच्चतम न्यायालय ने लोकायुक्त की नियुक्ति की, जबकि कायदे से ऐसा करने का अधिकार उत्तर प्रदेश के राज्यपाल को था। मई 2016 में उत्तराखंड विधानसभा में उच्चतम न्यायालय की देखरेख में फ्लोर-टेस्ट का आदेश दे दिया गया। कुछ ही दिनों बाद उच्चतम न्यायालय ने वहाँ कुछ घंटों के लिए राष्ट्रपति शासन लगाने का आदेश दे दिया। स्पष्टतः यह अधिकार राष्ट्रपति के पास होता है।

उच्चतम न्यायालय की कई अन्य छोटे-मोटे मामलों में हस्तक्षेप करने की एक लंबी सूची बनाई जा सकती है। न्यायाधीश तो आते और जाते रहेंगे, परंतु न्यायालय के कदम अगर ऐसे तुच्छ मामलों में ऊलझते रहे, जिनमें ऊलझने की उसे कतई आवश्यकता नहीं है, तो फिर न्यायालयों में जमा होते मुकदमों की संख्या भी लगातार बढ़ती जायेगी। अच्छा तो यही होगा कि न्यायालय उन मामलों पर अधिक और पुख्ता ध्यान दें, जिन्हें वाकई न्यायालय की आवश्यकता है।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित अनिल धड़कर के लेख पर आधारित।